हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 ई० में आरत दुबे का छपरा, बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुआ । द्विवेदी जी का साहित्य कर्म भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास की रचनात्मक परिणति है । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बाँग्ला आदि भाषाओं व उनके साहित्य के साथ इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की व्यापकता व गहनता में पैठकर उनका अगाध पांडित्य नवीन मानवतावादी सर्जना और आलोचना की क्षमता लेकर प्रकट हुआ है । वे ज्ञान को बोध और पांडित्य की सहृदयता में ढाल कर एक ऐसा रचना संसार हमारे सामने उपस्थित करते हैं जो विचार की तेजस्विता, कथन के लालित्य और बंध की शास्त्रीयता का संगम है । इस प्रकार उनमें एकसाथ कबीर, तुलसी और रवींद्रनाथ एकाकार हो उठते हैं । उनकी सांस्कृतिक दृष्टि अपूर्व है । उनके अनुसार भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि समय-समय पर उपस्थित अनेक जातियों के श्रेष्ठ साधनांशों के लवण-नीर संयोग से विकसित हुई है ।

द्विवेदीजी की प्रमुख रचनाएँ हैं - 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क', 'कुटज', 'विचार-प्रवाह', 'आलोक पर्व', 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' (निबंध संग्रह); 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचंद्रलेख', 'पुनर्नवा', 'अनामदास का पोथा' (उपन्यास); 'सूर साहित्य', 'कबीर', 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप', 'नाथ संप्रदाय', 'कालिदास की लालित्य योजना', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' (आलोचना-साहित्येतिहास); 'संदेशरासक', 'पृथ्वीराजरासो', 'नाथ-सिद्धों की बानियाँ' (ग्रंथ संपादन); 'विश्व भारती' (शांति निकेतन) पत्रिका का संपादन । द्विवेदीजी को 'आलोकपर्व' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार, भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' सम्मान एवं लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि मिली । वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय, शांति निकेतन विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ विश्वविद्यालय आदि में प्रोफेसर एवं प्रशासनिक पदों पर रहे । सन् 1979 में दिल्ली में उनका निधन हुआ ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली से लिए गए प्रस्तुत निबंध में प्रख्यात लेखक और निबंधकार का मानववादी दृष्टिकोण प्रकट होता है । इस ललित निबंध में लेखक ने बार-बार काटे जाने पर भी बढ़ जाने वाले नाखूनों के बहाने अत्यंत सहज शैली में सभ्यता और संस्कृति की विकास-गाथा उद्घाटित कर दिखायी है । एक ओर नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की आदिम पाशविक वृत्ति और संघर्ष चेतना का प्रमाण है तो दूसरी ओर उन्हें बार-बार काटते रहना और अलंकृत करते रहना मनुष्य के सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक चेतना को भी निरूपित करता है । लेखक ने नाखूनों के बहाने मनोरंजक शैली में मानव-सत्य का दिग्दर्शन कराने का सफल प्रयत्न किया है । यह निबंध नई पीढ़ी में सौंदर्यबोध, इतिहास चेतना और सांस्कृतिक आत्मगौरव का भाव जगाता है ।

नाखून क्यों बढ़ते हैं

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं । अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है । मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका । हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अकसर उन्हें डाँटा करते हैं । पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं । काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर । आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं ?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था; बनमानुष जैसा । उसे नाखून की जरूरत थी । उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे । असल में वही उसके अस्त्र थे । दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था । उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था । फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा । पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा(रामचंद्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे) । उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए । इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था । मनुष्य और आगे बढ़ा । उसने धातु के हथियार बनाए । जिनके पास लोहे के अस्त्र और शस्त्र थे, वे विजयी हुए । देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के पास लोहे के अस्त्र थे । असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे । आर्यों के पास ये दोनों चीजें थीं । आर्य विजयी हुए । फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया । नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे । लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली । इतिहास आगे बढ़ा । पलीतेवाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है । नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है । पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं । अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता । तुम वही लाख वर्ष के पहले के नख-दंतावलंबी जीव हो – पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करने वाले और चरने वाले ।

ततः किम् । मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने

के लिए डाँटता है । किसी दिन – कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व – वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा । लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है । वे कमबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है । मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता । उसके भीतर बर्बर युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है । लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है ? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती ही जा रही है । मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है । यह तो उसका नवीनतम रूप है । मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ । ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं । मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती ।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था । वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारता था । उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बताई गई है । त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे । उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था । गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को । अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी । लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचनेवाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता ।

मानव शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणिविज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास-जन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं । दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है । अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजाने में भी, अपने-आप काम करती हैं । नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है । और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान स्मृतियों को ही कहते हैं । हमारी भाषा में इसके उदाहरण मिलते हैं । अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले । पर कौन सोचता है ? सोचना तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है । उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है । पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता । उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए । अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है ।

मेरा मन पूछता है – किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है ? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर ? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है – जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं ? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं । मैं भी पूछता हूँ – जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं ? – ये हमारी पशुता की निशानी हैं । भारतीय भाषाओं में प्राय: ही अंगरेजी के 'इण्डिपेण्डेन्स' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता । 15 अगस्त को जब अंगरेजी शासन के पत्र 'इण्डिपेण्डेन्स' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे । 'इण्डिपेण्डेन्स' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना । अंगरेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेण्डेन्स' कह सकते हैं । मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंगरेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इण्डिपेण्डेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका ? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किए – स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा । यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजाने में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है ? मुझे प्राणिविज्ञानी की बात फिर याद आती है – सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है ? स्वराज होने के बाद स्वभावत: ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाए । हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है । हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है । हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों । हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं । हमारे अनजाने में भी ये बातें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं । यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं । उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं । भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है । वह 'स्व' के बंधन को आसानी से छोड़ नहीं सकता । अपने-आप पर अपने-आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है । मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें । पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता । मरे बच्चे को गोद में दबाए रहने वाली 'बँदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती । परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसन्धित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें । कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते । भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं । सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाक और मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात से भिन्न है। आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। वह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर बढ़-दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। वह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है –

एतद्धि विदुषां श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च॥

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म-निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था - बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा - प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई। आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ – बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस

प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है । उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी । शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा । तबतक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है । वृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है । मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास – बिना सिखाए – आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है । बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं ।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है । मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है । परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है । नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस 'स्व'-निर्धारित आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है ।

कमबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा ।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. नाखून क्यों बढ़ते हैं ? यह प्रश्न लेखक के आगे कैसे उपस्थित हुआ ?
2. बढ़ते नाखूनों द्वारा प्रकृति मनुष्य को क्या याद दिलाती है ?
3. लेखक द्वारा नाखूनों को अस्त्र के रूप देखना कहाँ तक संगत है ?
4. मनुष्य बार-बार नाखूनों को क्यों काटता है ?
5. सुकुमार विनोदों के लिए नाखून को उपयोग में लाना मनुष्य ने कैसे शुरू किया ? लेखक ने इस संबंध में क्या बताया है ?
6. नख बढ़ाना और उन्हें काटना कैसे मनुष्य की सहजात वृत्तियाँ हैं ? इनका क्या अभिप्राय है ?
7. लेखक क्यों पूछता है कि मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है, पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? स्पष्ट करें ।
8. देश की आजादी के लिए प्रयुक्त किन शब्दों की अर्थ मीमांसा लेखक करता है और लेखक के निष्कर्ष क्या है ?
9. लेखक ने किस प्रसंग में कहा है कि बंदरिया मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती ? लेखक का अभिप्राय स्पष्ट करें ।
10. 'स्वाधीनता' शब्द की सार्थकता लेखक क्या बताता है ?
11. निबंध में लेखक ने किस बूढ़े का जिक्र किया है ? लेखक की दृष्टि में बूढ़े के कथनों की सार्थकता क्या है ?
12. मनुष्य की पूँछ की तरह उसके नाखून भी एक दिन झड़ जाएँगे । – प्राणिशास्त्रियों के इस अनुमान से लेखक के मन में कैसी आशा जगती है ?
13. 'सफलता' और 'चरितार्थता' शब्दों में लेखक अर्थ की भिन्नता किस प्रकार प्रतिपादित करता है ?
14. व्याख्या करें –
    (क) काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर ।
    (ख) मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ ।
    (ग) कमबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा ।
15. लेखक की दृष्टि में हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता क्या है ? स्पष्ट कीजिए ।
16. 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' का सारांश प्रस्तुत करें ।

पाठ के आस-पास

1. अपने शिक्षक से देवराज इंद्र और दधीचि मुनि की कथा मालूम करें ।
2. लेखक ने कालिदास के जिस कथन का हवाला दिया है उसका मूल रूप संस्कृत के शिक्षक से मालूम कर याद कर लें तथा उसके अर्थ को ध्यान में रखते हुए एक स्वतंत्र टिप्पणी लिखकर कक्षा में उसका पाठ करें ।
3. समय-समय पर भारत में बाहर से आनेवाली जातियों के नाम और समय अपने इतिहास के शिक्षक से मालूम करें ।

भाषा की बात

1. **निम्नलिखित शब्दों के वचन बदलें –**

   अल्पज्ञ, प्रतिद्वंद्वियों, हड्डी, मुनि, अवशेष, स्मृतियों, उत्तराधिकार, बँदरिया

2. **वाक्य-प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिंग-निर्णय करें –**

   बंदूक, घाट, सतह, अनुसंधित्सा, भंडार, खोज, अंग, वस्तु

3. **निम्नलिखित वाक्यों में क्रिया की काल रचना स्पष्ट करें –**

   (क) उन दिनों उसे जूझना पड़ता था ।
   (ख) मनुष्य और आगे बढ़ा ।
   (ग) यह सबको मालूम है ।
   (घ) वह तो बढ़ती ही जा रही है ।
   (ङ) मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा ।

4. 'अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है ।' -- इस वाक्य में आए विभक्ति चिह्नों के प्रकार बताएँ ।
5. स्वतंत्रता, स्वराज्य जैसे शब्दों की तरह 'स्व' लगाकर पाँच शब्द बनाइए ।
6. **निम्नलिखित के विलोम शब्द लिखें –**

   पशुता, घृणा, अभ्यास, मारणास्त्र, ग्रहण, मूढ़, अनुवर्तिता, सत्याचरण

शब्द निधि

अल्पज्ञ	:	कम जाननेवाला
दयनीय	:	दया करने योग्य
बेहया	:	बिना हया के, निर्लज्ज, बेशर्म
प्रतिद्वंद्वी	:	विरोधी
नखधर	:	नख को धारण करनेवाला, नाखून वाला
दंतावलंबी	:	दाँत का सहारा लेकर जीने वाला
विचरण	:	घूमना, भटकना
ततःकिम्	:	फिर क्या, इसके बाद क्याजोडिस घात एवं बवासीर
असह्य	:	न सह सकने योग्य

पाशवी वृत्ति	:	पशु जैसा स्वभाव एवं आचरण
वर्तुलाकार	:	घुमावदार, गोलाकार
दंतुल	:	दाँत वाला, जिसके दाँत बाहर निकले हों
दाक्षिणात्य	:	दक्षिण का (दक्षिण भारतीय)
अधोगामिनी	:	नीचे की ओर जानेवाली
सहजात वृत्ति	:	जन्म के साथ पैदा होने वाली वृत्ति या स्वभाव
वाक्	:	वाणी, भाषा
निर्बोध	:	नासमझ, नादान
अनुवर्तिता	:	पीछे-पीछे चलना
अरक्षित	:	जो रक्षित न हो, खुला
अनुसंधित्सा	:	अनुसंधान की प्रबल इच्छा
सरकस	:	सर्वस्व, सबकुछ
पूर्वसंचित	:	पहले से इकट्ठा या जमा किया हुआ
समवेदना	:	दूसरे के दुख को महसूस करना
उद्भावित	:	प्रकट की गयी, उत्पन्न की गयी
असत्याचरण	:	असत्य आचरण, लोकविरुद्ध व्यवहरण
निर्वैर	:	बिना वैर-विरोध के
उत्स	:	स्रोत, उद्गम, मूल
आत्मतोषण	:	अपने को संतुष्ट करना, अपने को समझाना
चरितार्थता	:	सार्थकता
निःशेष	:	जिसका शेष भी न बचे, सम्पूर्ण
तकाजा	:	माँग

❑❑❑